Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2025, E-Journal, Vol. I, Issue LI (51), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

रंगमंच की पृष्ठभूमि और हिन्दी साहित्य में रंगमंच परम्परा

डॉ. रोशनलाल अहिरवार*

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र) भारत

शोध सारांश – मानव जीवन में रंगमंच परम्परा का सर्वोच्च स्थान है जीवन में नीरसता को दूर करने के लिए मनोरंजन का होना आवश्यक है इसमे प्राचीन काल से रंगमंच की परम्परा महत्वपूर्ण रही है लोक रंगमंच संस्कृत,पारसी, हिंदी में विकसित हुआ है इसका आरंभ वैदिक काल से वर्तमान समय तक विकसित परम्परा को धारण किए हुये है। रंगमंच की परम्परा तथा हिंदी साहित्य में रंगमंच परम्परा का विकास शोधपत्र का विषय है।

शब्द कुंजी – रंगमंच परम्परा , संस्कृत रंग परम्परा, पारसी रंग परंपरा, लोक रंग परम्परा, हिन्दी साहित्य में रंगमंच परम्परा, भारतेन्दु युग रंग–परम्परा, प्रसादयुगीन रंग–परम्परा, प्रसादोत्तर रंग परम्परा।

प्रस्तावना – रंगमंच की परम्परा प्राचीन काल से विकसित परम्परा रही है नाटक को खेला जाने वाला स्थान रंगमंच कहलाता है रंगमंच की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है जो जन–जन तक भिन्न–भिन्न रूपों से प्रचलित रही है। समय के साथ इसका रूप सुधरता गया और परिपक्व रूप विकसित होता गया है

रंगमंच दो शब्दो से मिलकर बना है :– **रंग और मंच** । अर्थ की दृष्टि से मंच अभिनय करने के लिए बनाया जाने वाला ऊंचा स्थान तथा रंग दीवारों,पर्दो व वेशभूषा में विभिन्न रंगों के प्रयोग करके आकर्षक दृश्य निर्मित करना है रंगमंच संस्कृति का अभिन्न अंग एवं जीवन्त कला है। यह युग और जीवन परिवेश का बड़ा मंच है जहां अभिनयकर्ता के माध्यम से जीवन प्रदर्शित होता है सार्वजनिक आमोद, मनोविनोद हेतु रंगमंच के द्वारा ऐसा ऐसा अभिनव जिसमें आनंद, गीत, नृत्य संगीत और उत्सव की भांति इसका रसपान किया जाये निश्चित ही रंगमंच को चरित्रार्थ करता है।

रंगमंच परम्परा का एक अपना इतिहास है। यह विकसित परम्परा शताब्दियों के इतिहास का परिणाम है। प्रत्येक युग में कुछ ऐसी रूढियाँ व मान्यताएँ स्थापित हुई जो युग की पहचान बनती गई । अत्याधुनिक युग में रंग परम्परा समृद्ध विकसित परम्परा उभर कर सामने आई है तथा एक ऐसा माध्यम है जो मनोविनोद के साथ मनुष्य को जीवन से जोड़ने का कार्य करती है आज नाटक अभिनेता निर्देशक, मंत्र, ध्वनि, संगीत, वाद्ययंत्र रूप, सजा, प्रकाश व्यवस्था और मुख्य दर्शक रंगमंच के अंग है तथा यह जन–जन तक लोकप्रिय विधा बन गई है। रंगमंच एक ओर मनोविनोद अंग है वहीं दूसरी ओर आधुनिक समय में रोजगार, धन प्राप्ति, यश प्राप्ति आदि के लिए अवसर प्रदान करने मे सक्षम है।

संस्कृत रंग परम्परा – संस्कृत रंग परम्परा के उद्गम में मनुष्य की मनोरंजन की आदिम प्रवृत्ति लक्षित होती है सभ्यता के विकास होने के साथ–साथ नाट्य रूप परिष्कृत होता गया। वैदिक काल में संस्कृत रंग परम्परा का आदिकाल माना गया है ।

'वाल्मीकि रामायण, महाभारत, पाणिनि की अष्टाध्यायी, पतंजलि के महाभाष्य, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, बौद्ध एवं जैन धर्म ग्रंथो आदि में संस्कृत नाटकों की समृद्ध रंग परम्परा के प्रारंभिक रूप का स्पष्ट संकेत मिलता है कि आज से सहस्त्र वर्ष पूर्व वैदिक काल में भी संस्कृत नाट्य रंग परम्परा अपने पूर्ण विस्तार के साथ विद्यमान थी और वहां नाटक अभिनीत होते थे।'[1]

'संस्कृत रंग परम्परा का विस्तृत वर्णन भरतमुनि के नाट्य शास्त्र मे प्राप्त होता है चार वर्णों के मनोरंजन के लिए इंद्र आदि देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्म ने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर पंचम वेद के रूप में नाट्य वेद की रचना की।'[2]

यह स्पष्ट होता है कि वैदिक रंग परम्परा में नाटक तत्व विद्धान थे संस्कृत नाट्य मण्डपो की लंबाई बत्तीस हाथ लगभग होती थी।इन्हे शास्त्री रंगमंच कहा जाता था भूमि समतल ,कठोर मत्सयपीठ के सामान ढलुवा होता था। इसका एक भाग रंग मंडप तथा दूसरा भाग प्रेक्षाग्रह होता था प्रेक्षाग्रह में दर्शक का स्थान तथा तथा रंगमण्डप में शिक्षित अभियनेता को स्थान दिया जाता था। नाट्यशास्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रंगमंच का पूरा वातावरण आनुष्ठानिक,आध्यात्मिक होता था। नाटक का सफल मंचन हेतु पूजा देवी प्रतिमा स्थापना, यक्ष, कुबेर, देव आदि से बलि स्वीकार करने की प्रार्थना, पुष्प सज्जित कुंभ स्थापना, दीपिका का प्रकाशित करना, रंग युद्ध आदि नाट्य परम्परा में शामिल था। रंग परम्परा में नायक का गुण धीर होना आगम की अपेक्षा कर्म को प्रधान माना गया है ।जीवन का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति माना गया है नाटक के मंचन में रथ, यान, पशु पक्षी प्रतीकात्मक सामग्री आदि का प्रयोग किया जाता था ।

पारसी रंग परम्परा– पारसी रंग परम्परा विशाल एवं लीक से हटकर रही है यह उस समय विकसित होकर उभर कर सामने आई जब राष्ट्रीय चेतना, इतिहास पुराण गौरव की भावना, धर्म निष्ठ हिंदू समाज, सुधारावादी आंदोलनो की भावना जनता में व्याप्त थी मनोरंजन के लिए ऐसे रंगमंच की आवश्यकता थी जिसमें गौरवपूर्ण चरित्र, महान आख्यान, लौकिक के साथ श्रृंगारिकता भी हो ।

'उच्च अभिजात्य अंग्रेज अधिकारियों ने समय की मांग को पहचानते हुए एक रंगमंच बनाया पर वह भी बनावटी सा था। बम्बई 1849 में ग्रांड रोड पर श्बम्बई थियेटरश रंगमंच बनाया गया जिसमें सभी हिंदुस्तानी मिलकर नाटक करते थे सर्वप्रथम पेस्टर्न जी और फरोम जी ने यओरिजिनल थिएटर' की स्थापना की।1877 में खुर्शीद जी वाली बाल ने यविक्टोरिया थियेटिकल कंपनी' की स्थापना की। 1890 में मोहम्मद अली जग्गबुदा तथा सोहराब जी ने यन्यू एल्फ्रेड' कंपनी खोली। आचार्य नंददुलारे बाजपेयी के अनुसार 1860 से लेकर 1930 तक पारसी रंगमंच ही हिंदी रंगपंच बना रहा।'[3]

पारसी रंग गर्मियों के द्वारा रंग कला का अभिनय मंच पर किया जाता था। नाटक प्रस्तुति के आरंभ में संस्कृत नाटकों की तरह मंगलाचरण, सूत्रधार तथा नटी द्वारा नाट्यारम्भ की परम्परा ,पूरे रंगमंच ,विधान तथा प्रस्तुतीकरण पारसी रंगमंच भारतीय तथा पश्चात मिलाजुला रूप है मंचीय प्रकाश व्यवस्था का उपयोग नेपथ्य में ध्वनि प्रसारण नहीं था ।आकाश भाषित का प्रयोग था। बड़े-बड़े रंगीन पर्दो का प्रयोग, अभिनेता नाच गाने, तलवार बाजी में निपुण, स्त्री पात्रो की जगह पुरुष पात्र होते थे हर कंपनी के के पास अच्छे कलाकार होते थे।

'पारसी रंग-परम्परा में पारसी कम्पनी का एक नाटककार होता था। वह रंगमंचीय नाटक तैयार करता था। इसमें चटपटे गीत, फडकते संवाद और शेर का उल्लेख होता था। नाटक के बीच में नृत्य, चित्र और झाँकी की योजना बनाई जाती थी। इसी आधार पर नाट्याभिनय का मूल्यांकन होता था। पारसी कम्पनियों में नाटककारों को रखने की होड लगती रहती थी उन्हें डर था कि कहीं उनके संवाद, चोरी न हो जायें क्योंकि उनमें लिखित नाट्याभिनय प्रकाशित किये जाते थे। पारसी नाट्यमण्डली के पास निर्देशक, प्रबन्धक और नाटककार अनिवार्य रूप से होते थे। तीनों में गहरा सामंजस्य होता था।'[4]

पारसी रंग परम्परा एक ऐसी रंग परम्परा है जिसमें पारसी रंग गर्मियों द्वारा अपनी रंग कला का अभिनय मंच पर किया जाता रहा है नाटकों की भाषा उर्दू से प्रभावित बोलचाल की भाषा होती थी सहगान (कोरस) का प्रचलन था पारसी रंग परम्परा का सबसे बड़ा योगदान हिंदी भाषा भाषियो को अपनी नाट्य परम्परा को आकर्षित किया। सभी भारतीय भाषाओं के रंगमंच को पारसी रंगमंच ने प्रभावित किया परिणाम स्वरुप विभिन्न शहरों में नाट्य क्लब बने। हिंदी रंग परम्परा को विकसित करने के लिए एक बातावरण पारसी रंगमंच ने दिया।

लोक रंग परम्परा – लोकरंग परम्परा से तात्पर्य एक ऐसी परम्परा से जो क्षेत्र को एक सूत्र बाधती है। लोक जीवन मे लोकनाट्यो का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। 'लोक शब्द भारतीय दृष्टि से जो अर्थ देता है वह अंग्रेजी के थ्व्स्ज्ञ से बने शब्द से भिन्न है।लोक शब्द अत्यंत प्राचीन काल से प्रयुक्त होता आया है लोक शब्द का अभिप्राय संपूर्ण जन समुदाय से है जो किसी देश में निवास करता हो।'[5] लोकनाट्य में गीत, नृत्य और संगीत शामिल होता है ।गीत, संगीत नृत्य ,बड़ा आनंद प्रदान करते हैं यह जनमानुष के मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन है

'डॉ. नगेंद्र के अनुसार लोकनाट्य सामूहिक आवश्यकताओं और कथानक, लोक तत्वो को समेटे हुए चलता है और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।'[6]

'जब कथा तत्व को अधिक मात्रा में लोकगीत और नृत्य से ही संयुक्त किया गया तभी से लोग नाटकों की रंग परम्परा का अनुभव माना गया है क्योंकि पूजा अर्चना ,पर्व ,त्यौहार,जन्म मरण आदि विशेष प्रसंगों पर अपनी सुख दुखात्मक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का माध्यम माना जाता रहा है।'[7]

लोकनाट्य की विशेषता है कि यह सुभाषित मंच की मांग नहीं करता है लोकरंग मंच पर अभिनीत होने वाले नाटकों की साज सज्जा बहुत सादी होती है ।हंसी ,ठहाके हाजिर जवाब, आदि मनोरंजन के साथ नाटक को उत्कर्ष बनता है इसमें ढोल तबले ,हारमोनियम ,पखावज नगाड़ा आदि लोग वाद्य यंत्र का प्रयोग होता है प्रकाश व्यवस्था सादी होती है मंच सजावट ज्यादा तड़क भरी नहीं होती है।

लोकनाट्य आवश्यकतानुसार अस्थाई मंच निर्मित करता है यह जन नाटक पर्वो, उत्सवो एवं अनुष्ठानों के अवसरों पर खेले जाते हैं यह परम्परा प्राचीन है सामान्यत: लोक रंगमंच के नाटक रामायण ,महाभारत और भागवत तथा अन्य पुराणों के प्रसंग एवं कथाओं पर आधारित है जैसे रामलीला, रासलीला (ब्रज क्षेत्र) कीर्तनिया(बिहार के मैथिल) ,स्वाग ,यक्षगान (कर्नाटक) ,भवाई (राजस्थान),विदेसिया(बिहार के पश्चिमी जिलों आरा छपरा तथा पूर्व उत्तर प्रदेश के जिलों विशेषकर बलिया देवरिया),माच(मालवा) ,तमाशा (महाराष्ट्र), नौटंकी ,जात्रा (पश्चिम बंगाल पूर्वी क्षेत्र) अन्य लोकनाट्य गवरी (मेवाड़ में भीलों का सामुदायिक नृत्य) नाचा में सखी (छत्तीसगढ़) ,भाण्ड (राजस्थान) ,तुर्राकलंगी (नीमच चितौड)रमामत (बीकानेर) आदि है। लोक रंग परम्परा प्राचीन एवं समृद्ध शाली परम्परा रही है आधुनिक काल में भी यह परम्परा विकसित श्रेणी में परिपक्व हो रही है।

हिन्दी साहित्य में रंगमंच परम्परा – प्रारंभिक काल में मानव के सामाजिक जीवन धार्मिक गतिविधियों को शामिल करके नाटकों को रचा गया जैसे रामलीला, इंद्रसभा कृष्ण लीला ,राजा हरिश्चंद्र आदि प्राचीन लोकनाट्य भारत में जनमानस के आकर्षण केंद्र रहे हैं गांव -गांव ,शहर -शहर लोगों द्वारा लोक नाटकों का लुफ्त लिया जाता रहा है आरंभ में खुले मैदान अथवा छायादार वृक्षों के नीचे लोकनाट्य के मंच हुआ करते थे जिसमें नौटंकी कठपुतलियों का तमाशा रामलीला रासलीला के मंजन किये जाते थे।

नाटक कला की अपनी श्रेष्ठता और विशेषता है क्योंकि नाटकों में अनेक दर्शकों को प्रभावित करने की क्षमता है लोक रंग मंच का आरंभ गलियो, मैदान, छायादारो वृक्षो के नीचे लोक जीवन के साथ आरंभ हुआ है अमंचीय नाटकों की इस परम्परा ने नुक्कड़ नाटक को जन्म दिया ।आरंभ में हास्य विनोद मनोरजन के लिए लोक रंग परम्परा का स्वरूप निर्मित हुआ।

हिंदी में रंगमंच परम्परा का विकास लगभग 19वीं शताब्दी के अत्तरार्ध में माना जाता है पूर्व में संस्कृत परम्परा से प्रभावित पारसी रंगमंच परंपराएं थी भारतेंदु युग के पूर्व लोकरंग परम्परा का उद्देश्य धन कमाना, खेल तमाशा करके मनोरंजन करना रहा लेकिन इस युग में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी तथा यह राष्ट्रीय जागरण का काल था।

भारतेन्दु युग हिन्दी रंग-परम्परा- हिंदी रग-परम्परा का आरभ भारतेन्दु युग से माना जा सकता है। क्योंकि इसी काल में भारतीय रंग-परम्परा विकसित हुई। भारतेन्दु का आगमन हिन्दी रंग-परम्परा क्षेत्र में एक युगान्तकारी घटना है। 'नवाबी रंग मंच की सर्वोत्तम रचना 'इन्दर सभा' (गीतिनाट्य) का रंगमचीय इतिहास में विशेष महत्व है। इसे पर्याप्त प्रसिद्धि मिली तथा यह माना जाता है कि इन्द्रसभा के अभिनय के लिए पहला हिन्दी-रंगमंच केसरबाग में बना, जिसमें लखनऊ के रंगीले वाजिद अली शाह ने स्वयं इन्द्र बनकर अभिनय किया।'[8]

भारतेन्दु जी ने इसी नाटक की पैरोडी पर 'बंदर सभा' नाटक लिखा। जिसने जनता को प्रभावित किया भारतेन्दु एक कुशल नाटककार थे उन्होंने नाटकों के द्वारा जन-मानस की नाट्य रूचियों को परिवर्तित किया बल्कि प्राचीन भारतीय रंगमंचीय प्रवृत्तियों का सामन्जस्य कर, नवीन रंग मंच की स्थापना की है। भारतेन्दु ने बनारस थियेटर की नींव डाली। अप्रैल 1868 में शीतला प्रसाद त्रिपाठी द्वारा रचित जानकी मंगल का मंचन किया। इनकी नाट्य मण्डली भारतेन्दु नाट्य मण्डली के नाम से प्रसिद्ध हुई। इन्होंने देश के पुरातन इतिहास की मर्यादा को ध्यान में रखकर स्वयं नाटक लिखे तथा उनका मंचीय प्रदर्शन करवाकर भारतीय जनता के हृदय में देश एवं नाटकों के प्रति प्रेम स्थापित किया।

इस युग मे दूसरी भाषाओ के नाटको अनूदित किया गया जैसे संस्कृत से रत्नावली,मुद्राराक्षस, धनंजय विजय,अग्रेजी से दुर्लभ बन्धु आदि। भारतेन्दु जी ने मौलिक नाट्यो की रचना की जैसे भारत दुर्दशा ,नीलामी,अन्धे नगरी,भारत जननी आदि। इस काल के अन्य नाटककारो मे लाला श्रीनिवास के नाटक श्री प्रहलाद चरित्र, संयोगिता स्वयंवर, रणधीर प्रेम मोहनी, राधाकृष्ण दास द्वारा महारानी पद्मावती,धर्मालाप, महाराणा प्रताप राधाचरण गोस्वामी द्वारा तन मन धन गोसाई जी के अर्पण, श्रीदामा। गोपाल गहमरी द्वारा देशदशा,जैसे को तैसा,विद्या विनोद आदि नाटक लिखे, मंचीय किये गये।

नाटकों में राष्ट्रीयता, देश-प्रेम, सामाजिक सुधार, अत्याचारपूर्ण कुशासन की निंदा आदि भावनाओं से राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना का भाव है। ऐतिहासिक, पौराणिक, काल्पनिक और प्रत्यक्ष सामाजिक जीवन से सम्बंध रखने वाले पात्रों और कथानकों को अपनाया, श्रृंगार, हास्य, करूण और वीर रसों को अपनाया। सुखान्त एवं दुखान्त दोनों प्रकार के नाटक लिखे।

प्रसादयुगीन हिन्दी रंग-परम्परा – भारतेन्दु के बाद लगभग चालीस वर्ष तक हिन्दी रंगमंचीय परम्पराओं में कोई प्रगति नहीं हुई। जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी नाटकों के विकास में अपना योगदान प्रदान किया। प्रसाद के नाटक मे विशाखा ,अजातशत्रु,कामना,स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त ,आदि है।इस युग मे अन्य नाटककारो मे हरिकृष्ण प्रेमी,किशोरीदास वाजपेयी,वृन्दावन लाल वर्मा,चतुरसेन शास्त्री आदि है।

रंगमंच के विषय में प्रसाद का स्पष्ट मत था कि रंगमंचीय रूढियाँ नाटकीय विकास में एक सीमा तक ही साधक होती हैं तथा नवीन प्रयोगों के साथ-साथ ही नाट्य निर्माता को प्रयोग करने पड़ते हैं क्योंकि नियमबद्धता की कठोरता नाट्यभूमि की तीव्रता एवं प्रखरता में बाधक बन जाती है इससे रंगमंचीय विकास अवरूद्ध हो जाता है।

प्रसादोत्तर हिन्दी रंग परम्परा – प्रसादोत्तर काल का नाट्य परम्परा का समृद्ध काल है। प्रसाद के बाद हिन्दी नाट्य साहित्य में एक नवयुग का आरंभ होता है। समाजवादी, साम्यवादी, यर्थाथवादी, व्यक्तिवादी, प्रतीकवादी तथा अनेक वाद जैसे- मनोविश्लेषणवाद, यौनवाद, आत्मभिव्यंजनावा, प्रकृतिवाद आदि गुण नाटको को श्रेष्ठ बनाते है।

इस युग के नाटको मे विष्णु प्रभाकर द्वारा डॉकटर,टूटते परिवेश, युगे युगे क्रांति जगदीशचन्द्र माथुर द्वारा कोणार्क, शारदीया,पहला राजा मोहन राकेश द्वारा आषाढ का एक दिन,लहरो के राजहंस,आधे-अधूरे अन्य नाटककारो मे सुरेन्द्र वर्मा,डॉ.शंकर शेष,भीष्म शाहनी मन्नू भण्डारी, गोविंद चातक आदि एवं वर्तमान समय के नाटक कारो का महत्वपूर्ण योगदान है।

अंतत: रंगमंच परम्परा का विकसित रूप जो आज हमारे सामने है इसका सतत् विकास हुआ है वर्तमान समय मे नाटको का रंग मंच पर खेला जाना अत्याधुनिक तकनीकियो के माध्यम से सरल हुआ है।तथा बडे स्तर पर जनता के मनोरंजन का केन्द्र बिन्दु है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. आधुनिक हिंदी नाटकों की उत्पत्ति पर आंग्ला -नाटकों का प्रभाव : उपेंद्र नारायण, पृष्ठ 28,29
2. नाटक शास्त्र : भरत मुनि प्रथम अध्याय पृष्ठ 17
3. पारसी हिंदी रंगमंच : लक्ष्मी नारायण लाल पृष्ठ 86
4. हिंदी के प्रतीक नाटक और रंगमंच :केदारनाथ सिह पृष्ठ 87
5. लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति :डॉ. रोशनी कैलाश पुस्तक सदन भोपाल, 2024 पृष्ठ 8
6. लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति :डॉ. रोशनी कैलाश पुस्तक सदन भोपाल, 2024 पृष्ठ 6
7. हिंदी के प्रतीक नाटक और रंगमंच :केदारनाथ सिह पृष्ठ 76
8. कल्पना हिन्दी रंगमंच की दिशाएँ श्री गजानन शर्मा सितम्बर 1954

****